# अध्याय 15: श्रम विभाजन और जाति-प्रथा

## विषय-सूची

1 प्रश्नावली · 6 प्रश्न

प्रश्नावली 15.1 पाठ के साथ 6 प्रश्न

## प्रश्नावली 15.1 — पाठ के साथ

### प्रश्न 1

जाति प्रथा को श्रम-विभाजन का ही एक रूप न मानने के पीछे आंबेडकर के क्या तर्क हैं?

**हल**

आंबेडकर जाति-प्रथा को श्रम-विभाजन का स्वाभाविक या उचित रूप नहीं मानते। उनके मुख्य तर्क इस प्रकार हैं:
पहला तर्क: जाति-प्रथा केवल श्रम-विभाजन नहीं, बल्कि श्रमिक-विभाजन भी है। आधुनिक सभ्य समाज में श्रम-विभाजन तो होता है, परंतु किसी भी सभ्य समाज में श्रम-विभाजन की व्यवस्था श्रमिकों का विभिन्न वर्गों में अस्वाभाविक विभाजन नहीं करती।
दूसरा तर्क: जाति-प्रथा श्रमिकों का अस्वाभाविक विभाजन करने के साथ-साथ विभाजित वर्गों को एक-दूसरे की अपेक्षा ऊँच-नीच भी करार देती है। यह स्थिति विश्व के किसी भी अन्य समाज में नहीं पाई जाती।
तीसरा तर्क: जाति-प्रथा में श्रम-विभाजन मनुष्य की रुचि पर आधारित नहीं है। कुशल समाज बनाने के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार पेशा स्वयं चुने, परंतु जाति-प्रथा में मनुष्य का पेशा उसके प्रशिक्षण या निजी क्षमता का विचार किए बिना गर्भधारण के समय से ही — माता-पिता के सामाजिक स्तर के अनुसार — निर्धारित कर दिया जाता है।
चौथा तर्क: जाति-प्रथा मनुष्य को जीवन-भर एक ही पेशे में बाँध देती है, भले ही वह पेशा अनुपयुक्त होने के कारण वह भूखों मरे। आधुनिक युग में उद्योग-धंधों की तकनीक में निरंतर परिवर्तन होते हैं जिससे पेशा बदलने की आवश्यकता पड़ सकती है, किंतु जाति-प्रथा यह अनुमति नहीं देती।
इस प्रकार आंबेडकर सिद्ध करते हैं कि जाति-प्रथा का श्रम-विभाजन न तो स्वाभाविक है, न मनुष्य की स्वेच्छा पर आधारित — अतः यह बेरोजगारी और उत्पीड़न का कारण बनती है।

**उत्तर: आंबेडकर के अनुसार जाति-प्रथा केवल श्रम-विभाजन नहीं बल्कि श्रमिक-विभाजन भी है; यह मनुष्य की रुचि नहीं बल्कि जन्म पर आधारित है; यह ऊँच-नीच का भेद उत्पन्न करती है और मनुष्य को जीवन-भर एक पेशे में बाँधकर परिवर्तन की स्वतंत्रता नहीं देती।**

### प्रश्न 2

जाति प्रथा भारतीय समाज में बेरोजगारी व भुखमरी का भी एक कारण कैसे बनती रही है? क्या यह स्थिति आज भी है?

**हल**

जाति-प्रथा और बेरोजगारी का संबंध: आंबेडकर स्पष्ट करते हैं कि जाति-प्रथा पेशे का दोषपूर्ण पूर्वनिर्धारण करती है और मनुष्य को जीवन-भर एक ही पेशे में बाँध देती है।

आधुनिक युग में उद्योग-धंधों की प्रक्रिया व तकनीक में निरंतर विकास और कभी-कभी अकस्मात परिवर्तन होते हैं, जिसके कारण मनुष्य को अपना पेशा बदलने की आवश्यकता पड़ सकती है।

किंतु हिंदू धर्म की जाति प्रथा किसी भी व्यक्ति को ऐसा पेशा चुनने की अनुमति नहीं देती जो उसका पैतृक पेशा न हो, भले ही वह उसमें पारंगत हो।

इस प्रकार पेशा परिवर्तन की अनुमति न देकर जाति-प्रथा भारत में बेरोजगारी का एक प्रमुख व प्रत्यक्ष कारण बनी रही है। अनुपयुक्त पेशे में बँधा व्यक्ति भुखमरी का शिकार भी हो सकता है।

आज की स्थिति: कानूनी और संवैधानिक दृष्टि से जाति-आधारित पेशे की बाध्यता समाप्त हो चुकी है। शिक्षा और आर्थिक अवसरों के विस्तार से अनेक लोग अपनी जाति से भिन्न पेशे अपनाने में सक्षम हुए हैं।

परंतु सामाजिक यथार्थ यह है कि ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों में जातीय भेदभाव अभी भी रोजगार के अवसरों को प्रभावित करता है। भूमिहीन दलित समुदाय अभी भी परंपरागत पेशों तक सीमित रहने को विवश है।

**उत्तर: जाति-प्रथा मनुष्य को पैतृक पेशे में जीवन-भर बाँध देती है और पेशा बदलने की अनुमति नहीं देती। आधुनिक तकनीकी परिवर्तनों के कारण जब किसी का पेशा अप्रासंगिक हो जाता है तो वह बेरोजगारी व भुखमरी का शिकार बनता है। कानूनी रूप से यह स्थिति बदली है, किंतु सामाजिक यथार्थ में जातीय भेदभाव का असर अभी भी दिखता है।**

---

## प्रश्न 3

लेखक के मत से 'दासता' की व्यापक परिभाषा क्या है?

### हल

आंबेडकर 'दासता' की एक व्यापक और आधुनिक परिभाषा देते हैं जो केवल कानूनी पराधीनता तक सीमित नहीं है।

उनके अनुसार: 'दासता' केवल कानूनी पराधीनता को ही नहीं कहा जा सकता।

'दासता' में वह स्थिति भी सम्मिलित है जिससे कुछ व्यक्तियों को दूसरे लोगों के द्वारा निर्धारित व्यवहार एवं कर्तव्यों का पालन करने के लिए विवश होना पड़ता है।

यह स्थिति कानूनी पराधीनता न होने पर भी पाई जा सकती है। उदाहरण के रूप में उन्होंने जाति-प्रथा का उल्लेख किया है — जाति-प्रथा में कुछ लोगों को अपनी इच्छा के विरुद्ध पेशे अपनाने पड़ते हैं।

इस परिभाषा के अनुसार जब किसी व्यक्ति को अपना व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता नहीं होती, तो वह दासता में ही जी रहा है — भले ही कानून की नजर में वह स्वतंत्र हो।

इस प्रकार आंबेडकर 'दासता' को न केवल शारीरिक बंधन में बल्कि सामाजिक और आर्थिक विवशता के अर्थ में भी समझते हैं।

**उत्तर: आंबेडकर के मत से 'दासता' केवल कानूनी पराधीनता नहीं है। इसमें वह स्थिति भी शामिल है जिससे कोई व्यक्ति दूसरों द्वारा निर्धारित व्यवहार एवं कर्तव्यों का पालन करने के लिए विवश हो — जैसे जाति-प्रथा में अपनी इच्छा के विरुद्ध पेशे अपनाना। अपना व्यवसाय न चुन पाना भी दासता ही है।**

---

## प्रश्न 4

शारीरिक वंश-परंपरा और सामाजिक उत्तराधिकार की दृष्टि से मनुष्यों में असमानता संभावित रहने के बावजूद आंबेडकर 'समता' को एक व्यवहार्य सिद्धांत मानने का आग्रह क्यों करते हैं? इसके पीछे उनके क्या तर्क हैं?

**हल**

आंबेडकर मानते हैं कि मनुष्यों की क्षमता तीन बातों पर निर्भर रहती है: (1) शारीरिक वंश-परंपरा, (2) सामाजिक उत्तराधिकार — जैसे माता-पिता की कल्याण कामना, शिक्षा और वैज्ञानिक ज्ञानार्जन, और (3) मनुष्य के अपने प्रयत्न।

इन तीनों दृष्टियों से मनुष्य समान नहीं होते — यह तथ्य है। परंतु आंबेडकर कहते हैं कि शाब्दिक अर्थ में 'समता' असंभव होते हुए भी यह एक नियामक सिद्धांत है।

पहला तर्क (न्याय का तर्क): व्यक्ति की असमानता तीसरे आधार — अर्थात अपने प्रयत्नों — पर जितनी है, उतनी के आधार पर असमान व्यवहार उचित हो सकता है। किंतु पहले दो आधार — वंश-परंपरा और सामाजिक उत्तराधिकार — मनुष्य के अपने वश की बातें नहीं हैं। इन आधारों पर असमान व्यवहार करना नितांत अनुचित है और सुविधा-संपन्नों के पक्ष में निर्णय देना है।

दूसरा तर्क (समाज की उपयोगिता का तर्क): समाज की अपने सदस्यों से अधिकतम उपयोगिता तभी प्राप्त की जा सकती है जब सदस्यों को आरंभ से ही समान अवसर एवं समान व्यवहार उपलब्ध कराया जाए।

तीसरा तर्क (व्यावहारिकता का तर्क): एक राजनीतिज्ञ के पास बड़ी जनसंख्या से व्यवहार करते समय न तो इतना समय होता है, न प्रत्येक की अलग-अलग क्षमताओं के आधार पर भिन्न व्यवहार करना संभव होता है। इसलिए व्यावहारिक रूप से सभी के साथ समान व्यवहार ही एकमात्र व्यवहार्य सिद्धांत बनता है।

निष्कर्ष: 'समता' यद्यपि काल्पनिक जगत की वस्तु है, फिर भी यह व्यावहारिक भी है और राजनीतिज्ञ के व्यवहार की एकमात्र कसौटी भी।

---

**उत्तर: आंबेडकर के अनुसार वंश-परंपरा और सामाजिक उत्तराधिकार मनुष्य के वश की बात नहीं — इन आधारों पर असमान व्यवहार अन्यायपूर्ण है। समान अवसर मिलें तो समाज की अधिकतम उपयोगिता संभव है। राजनीतिज्ञ के लिए भी लाखों लोगों से व्यक्तिगत रूप से भिन्न व्यवहार असंभव है; इसलिए 'समता' एक व्यावहारिक और न्यायसंगत सिद्धांत है।**

---

## प्रश्न 5

सही में आंबेडकर ने भावनात्मक समत्व की मानवीय दृष्टि के तहत जातिवाद का उन्मूलन चाहा है, जिसकी प्रतिष्ठा के लिए भौतिक स्थितियों और जीवन-सुविधाओं का तर्क दिया है। क्या इससे आप सहमत हैं?

**हल**

आंबेडकर का मूल दृष्टिकोण: आंबेडकर ने जातिवाद के उन्मूलन को केवल आर्थिक तर्क पर नहीं, बल्कि स्वतंत्रता, समता और भ्रातृता के मानवीय आदर्शों पर आधारित किया है।

उन्होंने 'भ्रातृता' — अर्थात् भाईचारे — को आदर्श समाज का आधार माना, जो दूध-पानी के मिश्रण जैसा होना चाहिए और जिसका दूसरा नाम लोकतंत्र है।

उन्होंने गमनागमन की स्वाधीनता, जीवन तथा शारीरिक सुरक्षा की स्वाधीनता, संपत्ति के अधिकार तथा मनुष्य की शक्ति के सक्षम प्रयोग की स्वतंत्रता को इस आदर्श का हिस्सा बनाया।

भौतिक तर्क: उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि जाति-प्रथा आर्थिक दृष्टि से भी हानिकारक है — यह मनुष्य की

स्वाभाविक प्रेरणा-रुचि व आत्म-शक्ति को दबाकर उन्हें अस्वाभाविक नियमों में जकड़ देती है, जिससे कार्य-कुशलता नहीं पनपती।

सहमति का आधार: यह दृष्टिकोण सही एवं व्यापक है। केवल भावनात्मक अपील पर्याप्त नहीं होती; जब तक भौतिक स्थितियाँ और जीवन-सुविधाएँ समान नहीं होतीं, समता की भावना सतह पर ही रहती है।

आंबेडकर ने इन दोनों आयामों को एक साथ जोड़कर जातिवाद-विरोधी तर्क को न केवल नैतिक बल्कि व्यावहारिक और आर्थिक आधार भी दिया — यही उनके विचार की विशेषता और शक्ति है।

**उत्तर: आंबेडकर का यह दृष्टिकोण सटीक और समग्र है। उन्होंने भावनात्मक समत्व (स्वतंत्रता, समता, भ्रातृता) के साथ-साथ भौतिक स्थितियों और आर्थिक तर्क को भी जोड़ा। यह इसलिए आवश्यक है क्योंकि समान भौतिक अवसरों के बिना भावनात्मक समानता की बात खोखली रह जाती है।**

---

## प्रश्न 6

आदर्श समाज के तीन तत्त्वों में से एक 'भ्रातृता' को रखकर लेखक ने अपने आदर्श समाज में स्त्रियों को भी सम्मिलित किया है अथवा नहीं? आप इस 'भ्रातृता' शब्द से कहाँ तक सहमत हैं? यदि नहीं तो आप क्या शब्द उचित समझेंगे/समझेंगी?

### हल

आंबेडकर के आदर्श समाज के तीन तत्त्व हैं — स्वतंत्रता, समता और भ्रातृता। उन्होंने भ्रातृता को आदर्श समाज का अनिवार्य अंग माना और इसे लोकतंत्र का आधार बताया।

क्या स्त्रियाँ सम्मिलित हैं? आंबेडकर का उद्देश्य निश्चित रूप से संपूर्ण मानव समाज की मुक्ति का था — उन्होंने अछूतों, स्त्रियों और मजदूरों को मानवीय अधिकार व सम्मान दिलाने के लिए आजीवन संघर्ष किया। इसलिए उनके आदर्श समाज में स्त्रियाँ भी सम्मिलित हैं, भले ही 'भ्रातृता' शब्द भाषाई रूप से पुल्लिंग है।

'भ्रातृता' शब्द की सीमा: 'भ्रातृता' (brotherhood) शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'भाई' से बना है, अतः इसमें स्त्रियाँ स्वतः सम्मिलित नहीं होतीं — यह भाषाई सीमा है।

यदि हम इस शब्द को लैंगिक-तटस्थ दृष्टि से देखें, तो इसे स्वीकार किया जा सकता है — जैसा फ्रांसीसी क्रांति के 'Fraternité' में समूची मानवता का भाव था।

वैकल्पिक शब्द: 'भ्रातृता' के स्थान पर 'बंधुता', 'मानव-एकता', 'सौहार्द', या 'भाईचारा' अधिक उपयुक्त हो सकते हैं क्योंकि ये लिंग-निरपेक्ष हैं और स्त्री-पुरुष दोनों को समान रूप से सम्मिलित करते हैं।

आंबेडकर ने स्वयं कहा — 'क्या यह ठीक नहीं है, भ्रातृता अर्थात भाईचारे में किसी को क्या आपत्ति हो सकती है?' — यहाँ उन्होंने 'भाईचारे' का विस्तृत अर्थ दिया जो संकुचित नहीं है।

**उत्तर: आंबेडकर के आदर्श समाज में स्त्रियाँ सम्मिलित हैं क्योंकि उन्होंने जीवन भर स्त्रियों के अधिकारों के लिए संघर्ष किया। परंतु 'भ्रातृता' शब्द भाषाई रूप से पुल्लिंग है, अतः 'बंधुता' या 'भाईचारा' जैसे लिंग-निरपेक्ष शब्द अधिक उपयुक्त होंगे जो समूची मानवता को समेटें।**